यूजीसी केयर लिस्ट में शामिल
अक्टूबर–दिसंबर 2021
वर्ष 11, अंक–23

मूल्य–100/-
ISSN NO. 2320-5733

समसामयिक सृजन

समकालीन साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति का संगम

समसामयिक सृजन

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति का संगम

संरक्षक

डॉ. प्रभात कुमार

प्रधान संपादक

प्रो. रमा

संपादक

डॉ. महेन्द्र प्रजापति

संपादन सहयोग

रीमा प्रजापति

ले-आउट

स्कोप सर्विसेज, दरियागंज, नई दिल्ली

संपादकीय कार्यालय

मकान नं. 189, ब्लॉक-एच

विकासपुरी, नई दिल्ली-110018

पत्राचार

एफ-114, तृतीय तल, SLF वेद विहार,

नियर: शंकर विहार ऑटो स्टैंड, लोनी

गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश-201102

सदस्यता

आजीवन : 5000/-रुपए

संपर्क : 9871907081

वेबसाइट : www.samsamyiksrijan.com

E-mail : samsamyik.srijan@gmail.com

प्रकाशक एवं मुद्रण

हरिन्द्र तिवारी

हंस प्रकाशन, दिल्ली

मो. : 7217610640, 9868561340

ईमेल : hansprakshan88@gmall.com

वेबसाइट : www.hansprakashan.com

विभाजन की त्रासदी और मंटो 7
विजय पालीवाल

प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) का विश्लेषणात्मक अध्ययन 11
डॉ. अजीत कुमार बोहत

स्त्री अस्मिता संघर्ष और राजकमल चौधरी का हिंदी कथा साहित्य 15
अजीत सिंह

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी की इतिहास-दृष्टि 18
डॉ. अमित सिन्हा

मध्यवर्गीय जीवन और चन्द्रकिरण सौनरेक्सा का कहानी संग्रह 'आधा कमरा' 20
अनिता देवी

छत्तीसगढ़ के आर्थिक विकास में जल संसाधन की भूमिका 23
डॉ. श्रीमती अनीता मेश्राम

राहुल सांकृयायन का यात्रावृत्त साहित्य में वर्णित धार्मिक पक्ष 27
अरुण माधीवाल

सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना के पक्षधर : सुब्रह्मण्य भारतीय 30
डॉ. के. बालराजू

नेतृत्व और सम्प्रेषण का यथार्थ 34
डॉ. कुमार भास्कर

नयी कविता और कुँवर नारायण 37
भावना

आधुनिक दिल्ली हिंदी रंगमंच का स्वरूप 40
डॉ. धर्मेंद्र प्रताप सिंह

स्त्री अस्मिता का मिथक 43
गजेन्द्र पाठक

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारत-नेपाल संबंध 45
डॉ. गौरव कुमार शर्मा

रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में दलित का सामाजिक-बोध 47
गौतम कुमार खटीक

भारत में राजनीतिक विकास एवं संविधान संशोधन : एक विश्लेषण 50
गोविन्द नैनीवाल

भारत में जलवायु परिवर्तन एवं सरकारी नीतियां 54
हंसा मीना

बेटी उपन्यास में बेटी की गौरव गाथा 57
डॉ. कमलेश कुमारी

रामवृक्ष बेनीपुरी के गद्य साहित्य की भाषा 59
डॉ. करतार सिंह

राष्ट्रीय चेतना के प्रखर संवाहक : मैथिलीशरण गुप्त 62
डा. राम किंकर पाण्डेय

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वधिकारी : *डॉ. महेन्द्र प्रजापति द्वारा एच-ब्लॉक, मकान नं. 189, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018 से प्रकाशित*

डायन-प्रथा के नाम पर झारखण्ड में महिलाओं की हत्या, उत्पीडन एवं डायन-हत्या पीड़ित परिवारों का मनोवैज्ञानिक स्थिति का अध्ययन और न्यायिक हस्तक्षेप की आवश्यकता की अनुशंसा 505
डॉ. अनीता रंजन

छत्तीसगढ़ राज्य के मुंगेली जिले में अनुसूचित जाति के राजनीतिक प्रतिनिधित्व का विश्लेषण 508
नितेश कुमार साहू/डॉ. प्रमोद कुमार यादव

भारतीय समाज में बिहार के दलित महिलाओं की स्थिति 512
श्वेता कुमारी

9 अगस्त ''अगस्त क्रान्ति दिवस'' को समर्पित ''राष्ट्र निर्माण और गांधी'' (1947 से 2020 तक) समसामयिक भारत के विशेष संदर्भ में 515
डॉ. आनंद यादव

'मित्रो मरजानी' उपन्यास में नारी मूल्यों का हनन 519
डॉ. रीना डोगरा

श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि के साहित्य में जनजातीय संवेदना 521
ज्योति कुशवाहा/डॉ. अभिनेष सुराना

छत्तीसगढ़ की पारंपरिक लोकगीतों में सामाजिक परिदृश्य 524
रीना गोटे

स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी भाषा का योगदान 528
डॉ. संगीता उप्पे

''एकीकृत शिक्षक शिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिरूचि का अध्ययन'' 530
डॉ. विनोद कुमार जैन/मिस.रुबी शर्मा

''कोरोना काल मे दिव्यांगजनो में स्वास्थ्यगत् स्थिति का अध्ययन'' 535
विजय मानिकपुरी/डॉ. एल. के. शुक्ला

संस्कृत-साहित्य में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति 538
डॉ. रतीश चन्द्र झा

स्त्री विमर्श के आईने में 21वीं सदी की हिन्दी कहानियाँ 541
डॉ अनीता यादव

दाम्पत्य शोषण के विरुद्ध आत्मचेतस स्त्री-कोमल गांधार और कर्फ्यू नाटक के विशेष संदर्भ में। 544
विमल प्रकाश वर्मा/शोध छात्र–जे.एन.यू.

नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्कूली शिक्षाक्रम का अनुशीलन 547
अमित कुमार दूबे

अंग्रेजी कवि भौली के काव्य में प्रेम भावना तथा सौन्दर्य चेतना 550
डॉ. राखी उपाध्याय

राम कथा में स्त्री, दलित एवं आदिवासी चेतना 553
रागिनी मिश्रा

जैनेन्द्र कुमार के निवंधों में व्यक्ति और समाज 555
डॉ. रोहित कुमार

वर्तमान काल का साहित्य और मीडिया निर्मित संवेदना 558
डॉ. आर्यकुमार हर्षवर्धन

प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के कार्य संतुष्टि का लिंग एवं अधिवास के सन्दर्भ में अध्ययन 561
देवेन्द्र प्रताप सिंह/डॉ. रीता सिंह

प्राथमिक शिक्षकों के अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन 564
राघवेन्द्र वीर सिंह/डॉ. अखिलेश चन्द

स्नातक स्तर के कला एवं शिक्षा संकाय के विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं संवेगात्मक समायोजन अध्ययन का तुलनात्मक 567
डॉ. डी.पी. मिश्र/'रवीन्द्र नाथ त्रिपाठी

''भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास'' 570
रीना कुमारी

महादेवी वर्मा रूकाव्य व्यक्तित्व का विकास 573
डॉ. ममता

ब्रिटिश राज में हिन्दी पत्रकारिता 577
डॉ. विवेक कुमार जायसवाल

भारतीय जनतंत्र में मीडिया और विज्ञापनों की भूमिका का एक अध्ययन 584
डा. योगेन्द्र कुमार पाण्डेय

वेब सीरीज़ की सामाग्री का युवाओं पर प्रभाव का अध्ययन 587
अनुज

उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव 2022 में राजनीतिक संचार के आभासी माध्यमों का प्रादुर्भाव (प्रमुख राजनीतिक दलों और नेताओं का तुलनात्मक अध्ययन) 590
स्नेहाशीष वर्धन

दैनिक जागरण समाचारपत्र में भारतीय प्रधानमंत्री की नेपाल यात्रा का कवरेजः एक अध्ययन 594
डॉ. निरंजन कुमार

भारतीय वैचारिक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में तुलसी काव्य 599
ब्रजेश उपाध्याय

उदय प्रकाश के साहित्य में युगबोध के भाव एवं कलात्मक आयाम 602
डॉ. ज्ञानी देवी गुप्ता/उपदीप कौर

दृष्यचित्रण में समकालीनता के पर्याय : सतीश चन्द्र 605
रुचिन वर्मा

पटियाला दरबार के अल्पज्ञात कवि घनैया और उसकी पांडुलिपियाँ : एक अध्ययन 607
डॉ. सुनीता शर्मा

"मोहन राकेश के प्रमुख नाटकों का तात्विक अनुशीलन" 610
उमा हरदेल/डॉ. दीनदयाल दिल्लीवार

ओमप्रकाश वाल्मीकि का दलित दर्शन 613
दिलना के

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ 616
प्रो. वीरेन्द्र सिंह कश्यप

स्त्री पराधीनता की अंतहीन दासतां-राम रहीम 619
डॉ. रमेश यादव

स्वतंत्रतापूर्व हिंदी सिनेमा के देशभक्ति गीतों का राष्ट्र बोध 621
डॉ. अर्चना गौड़

रणेन्द्र के साहित्य में अभिव्यक्त आदिवासी समाज 624
मनोज कुमार जायसवाल

उच्च शिक्षा में निजीकरण : चुनौतियां एवं संभावित समाधान 626
डॉ सुनीता सिंह/सुश्री सीता पाण्डेय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : एक विश्लेषण 631
डॉ. हेमलता बोरकर वासनिक

समकालीन मानवीय भयावहता और 'एक कंठ विषपायी' का संदर्भ 634
श्री दीपक प्रभाकर वरक

समकालीन मानवीय भयावहता और 'एक कंठ विषपायी' का संदर्भ

श्री दीपक प्रभाकर वरक

आजादी के बाद हिंदी नाट्य साहित्य में विकसित नवीन नाट्य दृष्टि के अनुकूल समकालीन संदर्भ एवं यथार्थ के प्रस्तुतीकरण के लिए पौराणिक कथाओं या सूत्रों का सहारा लेने वालों में दुष्यन्त कुमार का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। काव्य नाटकों की परंपरा में धर्मवीर भारतीजी के 'अंधा युग' के समान युद्ध की विभीषिका और मानव मूल्यों का संकट 'एक कंठ विषपायी'का मूल कथ्य है। दुष्यन्त कुमार नाटक की भूमिका में लिखते हैं" यह काव्य नाटक पौराणिक परिवेश द्वारा जर्जर रूढ़ियो और परंपरा के शव से चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठभूमि और नये मूल्यों को संकेतिक करता है।"[1]

दुष्यन्त कुमार ने परम्परित आख्यान द्वारा जिन सवालों को 'एक कंठ विषपायी' में उठाया है, स्वयं उन्हीं सवालों से खुद को भी घिरा हुआ पाया है। स्वयंदुष्यन्त कुमार ने कहा है "हम जो नये से चौंकते हैं, उसका विरोध करते हैं, हम जो सत्य से बचते हैं और कतराते हैं और उन प्रश्नों पर मनन नहीं करते जो कटु, नये याअनपेक्षित होते हैं, हम जो एक परंपरा के मर जाने पर दुखी होते हैं, उसके शव को अरसे तक ढोते हैं और मृत्यु या समष्टि के सहज सत्य को स्वीकार नहीं करते, तथा युद्ध आदि के प्रश्न मैंने नाटक में उठाये हैं....... लेकिन मुझे क्या मालूम था कि यही सारे प्रश्न मेरे भी सामने आ खड़े होंगे। मैं जिस भाव–सत्य से अब तक चिपटा और जुड़ा हुआ था और जिसमें जी रहा था, मुझे उससे अलग होना पड़ेगा अथवा अलग कर दिया जाऊंगाँ"[2] स्पष्ट है कि कतिपय आधुनिक प्रश्नों को दुष्यन्त कुमार ने शिव–प्रसंग में अनायास ही खोजने की कोशिश की है। इस खोज में नाटककार ने पौराणिक आख्यान की घटनाओं का आश्रय कम और आधुनिक विचार तत्व और बौद्धिकता का सहारा अधिक लिया है। यह नाटक चार दृश्यों में विभाजित है। नाटक दो भिन्न–भिन्न स्तरों–परंपराग्रस्तता और युद्ध की विभीषिका पर चलता है। इसी को लेकर नाटककार ने नाटक में आधुनिक परिवेश को स्थान दिया है। नाटक की अधिकांश कथा तो प्रजापति दक्ष द्वारा किये जाने वाले यज्ञ में सब देवगणों के साथ भगवान शंकर को आमंत्रित न करने की घटना से संबंधित है जिसमें दक्ष कुमारी सती द्वारा अनाहूत ही दक्ष नगर में प्रवेश कर पति के सम्मानार्थ अपने प्राण त्याग देना और परिणामस्वरूप शिव के गणों द्वारा दक्ष–यज्ञ का विध्वंस आदि घटनाएं नाटक के प्रथम दो दृश्यों में वर्णित है। तीसरे दृश्य में भगवान शंकर का निर्वेद तथा प्रियसी–वियोग की प्रतिक्रिया वर्णित है और चौथा दृश्य युद्ध के औचित्य व अनौचित्य विवेचन से संबंधित है।

'भगवान शंकर''एक कंठ विषपायी' नाटक की केंद्रीय धुरी है। शंकर तीनों रूपों में हमारे सामने आते हैं– परंपरा के प्रति के विद्रोही, परंपराग्रस्त व्यक्ति और मानवीय संवेदनाओं से युक्त मोहासक्त प्रेमी। वस्तुतः 'एक कंठ विषपायी' का शंकर पर्याप्त अंतविरोधों से ग्रस्त है जो आधुनिक मानव के मानसिक अंतद्वन्द व्यंजित करने की क्षमता रखता है। सर्वप्रथम शंकर एक मोहासक्त प्रेमी के रूप में स्वयं अपनी अतरू पीड़ा व्यक्त करते हुए दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत होते हैं–

"देवत्व और आदर्शों का परिधान ओढ़
मैंने क्या पाया?
निर्वासन!
प्रियसि वियोग !! (गहरी पीड़ा से)
हर परंपरा के मरने का विष,
मुझे मिला,
हर सूत्रपात का
श्रेय ले गए और लोग।"[3]

शंकर मृत्यु के शाश्वत रूप को भी सत्य न मानकर प्रतिशोध की ज्वाला में जलते हुए सती के शव (मृत परंपरा का शव) को कंधे पर उठाए घूम रहे हैं–

"चलो अलकनंदा की ओर चले अब प्रियसि
वहाँ तुझे मैं
स्नान कराऊँगा उस जल में,
फिर चंदन से मांग भरूँगा।
वन्य प्रसूनों से मैं अपनी
प्रेयसी का श्रृंगार करूंगा।
फूट–फूटकर रोऊँगा कुछ देर वहां पर।
फिर बाहों में तुझे उठाकर,
हृदय लगाकर,
सुधियों का आव्हान करूंगा
फिर तुझको लेकर
मैं वन के हर उस कोने में विचरुंगा–
तेरे साथ जहां
जीवन के
सर्वोत्तम क्षण मैंने भोगे।"[4]

मृत परंपराओं के इस शव को ढोने से मानव की मुक्ति ही नाटककार का उद्देश्य है, जिससे नये मानवीय मूल्यों का अन्वेषण संभव हो–"परंपरा का खंडन कर कोई नया मूल्य उठाता है।"[5] वरुण और कुबेर के शब्दों में जगत के मोहान्ध व्यक्तियों की स्थिर प्रवृत्ति बतलाते हुए नाटककार ने उससे मुक्ति पाने की उद्धेश्यात्मक अभिव्यंजना की है–

"क्या मोह
ज्ञान को,
इतना अंधा कर देता है,
जो कि मृत्यु को भी हम
सत्य नहीं कहते हैं।
परिवर्तन पर होते हैं
विक्षुब्ध हृदय में
सुंदर और सनातन कहकर
शव से ही चिपके रहते हैं।"[6]

सती के परिणयद्वारा शंकर पहले ही परंपरा से विद्रोह कर चुके हैं लेकिन प्रियसी वियोग के कारण उनका व्यवहार दक्षादि देवों के समान रूढ़िग्रस्त हो गया।इस चरित्रगत असंगति के कारण कथावस्तु में व्यतिक्रम और प्रतीकों में विपर्यय आ गया है। सवाल यह उठता है कि परंपराद्रोही परंपराग्रस्त कैसे हो सकता है? इस शंका के समाधान हेतु धनंजय वर्मा का मत दृष्टव्य है–" तात्कालिक दृष्टि से इसे एक विसंगति कहा जा सकता है लेकिन विसंगति का यह संकट ही तो विषपायी का मूल कथ्य है। यही तो वह पीड़ा है जिसे शंकर भोगते हैं, हम भोगते हैं।....... हमारी पुरानी पीढ़ी ने क्या परंपराओं के प्रति विद्रोह नहीं किया, रूढ़ियों का खंडन कर नयी परंपराएं नहीं बनाई? लेकिन आज वही अपनी मृत परंपराओं के शव को अपनी पीठ पर लादे है और नये युग–सत्य को स्वीकार करने में झिझक रही है। अपने ही मृत अंश से मुक्त नहीं हो पा रही है। 'विषपायी' का यह वितरागीशिव भी सती के मोह से इतना आछन्न है कि उसकी मृत्यु के सत्य को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। वह एक परंपराभंजककी परंपराग्रस्त स्थिति और उससे मुक्ति की कहानी है और सती ऐसी ही परंपरा का प्रतीक है जिसके शव को मोहवश शंकर अपनी पीठ पर लादे हुए हैं, उससे मुक्त होना नहीं चाहते। वह चारित्रिक विसंगति, व्यतिक्रम और विपर्यय ही सही लेकिन क्या यह हमारा भोगा हुआ सत्य नहीं है? क्या जीवन का एक कड़ुवा और अपेक्षित प्रश्न नहीं है?"[7] अतः नाटककार इस तथ्य को सिद्ध करना चाहता है की परंपरा से मुक्ति नये जीवन मूल्यों के अन्वेषण के लिए आवश्यक है किंतु जब नये मूल्य भी स्थापित होकर रूढ़िग्रस्त हो जाते हैं तो उनके विरुद्ध भी विद्रोह अनिवार्य है। शंकर के व्यक्तित्व में परंपराग्रस्तता और परंपराविद्रोह की विसंगति के द्वारा नाटककार आधुनिक व्यक्ति की त्रासदी को व्यक्त करना चाहता है कि वह किस प्रकार परंपरा के बोझ से दबता चलाजा रहा है।

आज की मानवीय अवश्यम्भावी आशंका युद्ध है। युद्ध की विभीषिका को उभारने वाला सर्वहत युद्ध के भयंकर परिणामों का भोक्ता है"जो राजलिप्सा तथा युद्ध मनोवृति का मारा हुआ, सर्वहतनाम का एक नया पात्र समाविष्ट हुआ जो अनायास उभरकर आधुनिक प्रजा का प्रतीक बना गया है।"[8] उसके अधिकांश संवाद आधुनिक व्यवस्था और स्थिति पर प्रतीकात्मक शैली द्वारा व्यंग करते है।वह सामान्यतः युद्ध पीड़ित उस मानवता का प्रतिनिधित्व करता है जो इन परिस्थितियों को उत्पन्न करने का कारण न होते हुए भी उन्हें भोगने को विवश है तथा जिनकी नियतिसत्ता के हाथों में बंद है–

"क्योंकि यह विधाता के नियमों की विडम्बना है।
चाहे न चाहे किंतु
शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
प्रजा को वहन करना पड़ता है,
उसे गलित मूल्यों का दंड भरना पड़ता है।
और मैं मनुष्य ही नहीं हूं
मैं प्रजा भी हूँ।"[9]

इस साधारण पात्र के माध्यम से नाटककार दुष्यंत ने जनसामान्य की सत्ता के प्रति आक्रोश भावना तथा सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति दी है। सर्वहततंत्र और व्यवस्था के नाम पर शंकर की हिंसा का जीवित प्रतिरूप है। विष्णु के अनुसार वह युद्धोपरांत उग आई संस्कृति के ह्रासमान मूल्यों का एक भग्न प्रायः स्तूप है। जिसका समस्त जीवन भूख शब्द में सिमट गया है। युग की अतृप्त क्षुधा तथा संत्रस्त स्थिति को वह जनसामान्य के धरातल पर उद्घाटित करता है–

"तुम भी बुभुक्षित हो.....
मैं भी बुभुक्षित हूँ......
हम सब बुभुक्षित हैं.....
यह सारी दुनिया बुभुक्षित है.....।"[10]

अतःसर्वहत शासकों की प्रजाउपेक्षा तथा प्रजा की दलित स्थिति का प्रतीकात्मक चित्र उपस्थित करते हुए शासक और शासित के स्तर का अंतर भी स्पष्ट करता है। सर्वहत के चरित्र में विसंगति की ओर संकेत करते हुए आलोचक धनंजय लिखते हैं–"सर्वहत किसका प्रतीक है? जनता का? यदि यह सच है तो क्या जनता के भी दोवर्ग होते हैं? क्योंकि उसी काल और स्थिति में युद्ध की विभीषिका का परिणाम सर्वहत भी मौजूद है और युद्ध मांगती हुई जनता भी बाहर खड़ी है।"[11] वस्तुतः इसमें नाट्य के उद्देश्य में व्यतिक्रम उपस्थित हुआ है।

चारित्रिक दृष्टि से नाटक के अन्य पात्रों में प्रजापति दक्ष उदार लोक व्यवहार उपेक्षी, कोमल मानवीय भावनाओं से हीनएक उद्दृत शासक की प्रतीकात्मकता लिए है जिसे अपने जामाता शंकर तथा आत्मजा सती द्वारा प्रदर्शित थोड़ासा भी स्वतंत्र आचरण सह्य नहीं। अतः वह परंपराग्रस्तता का प्रतीक है, जिससे शंकर विद्रोह कर चुके हैं। इन्द्रशंकालु शासक के रूप में चित्रित है, तो वरुण और कुबेर निहित स्वार्थी तत्वों के प्रतीक है। इसी कारण शंकर के विरुद्धयुद्ध करने को कृत–संकल्प है। ब्रह्मा गूढ़ चिंतक तथा विष्णु विवेक और कर्मशील है। विष्णु के माध्यम से ही शिव को परंपरा के बोझ से मुक्ति मिलती है। किंतु विष्णु के प्रणाम बाण छोड़ते ही शंकर का क्रोध शान्त हो जाना संभावित युद्ध एवं रक्तपात का थम जाना एक चमत्कार सा लगता है जो नदृश्य काव्य में न वर्तमान संदर्भ में ही किसी विश्वसनीय महत्वपूर्ण अर्थ का द्योतन करता है।"[12] वस्तुतः प्रतीकात्मक की दृष्टि से नाटक के मुख्य पात्र शंकर और सर्वहत ही उल्लेखनीय है जो आधुनिक सन्दर्भ में नाटककार के उद्देश्य को व्यंजित करते हैं।

डॉ. हुकुमचंद राजपाल ने 'एक कंठ विषपायी' के शिवसन्दर्भ के मूल में अपमान और प्रतिशोध की वृत्तियों को आधारभूत मानते हुए उसे वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक स्तरों से जोड़कर एक नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके अनुसार 'एक कंठ विषपायी'की योजना इन्हीं के इर्द–गिर्द चक्कर काटती है। दक्ष स्वयं को शिव द्वारा अपमानित करना चाहते हैं। पति के अपमान को न सह सकने के कारण सती स्वयं को यज्ञ को समर्पित कर देती है। 'अपमान' का इससे चरम प्रतिकार और क्या हो सकता है? सती की जली देह को शिव कन्धे पर लेकर प्रतिशोध स्वरूप प्रलय करने हेतु कृत संकल्प है। लेखक ने परम्परितकथा को नवीन संदर्भों में प्रतिपादित किया है। वस्तुतः 'अपमान'और 'प्रतिशोध' ऐसी दुष्वृत्तियां आधार मूढ़ मति होना है। जब व्यक्ति एक पक्षीय दृष्टि से सोचने लगता है, केवल आत्म केंद्रित होकर चिंतन करता है, तभी स्वयं को पूर्णतः सही और दूसरे को दोषी मानने लगता है, तभी यह भ्रान्त धारणा धारणाएं जन्म लेती है।आज चारों ओर विषमता का वातावरण व्याप्त है, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपमानित कर नीचा दिखलाना चाहता है। एक देश दूसरे देश के प्रति प्रतिशोध की भावना को आश्रय दे रहा है। इन्हीं युगीन संदर्भो का सम्यक्निर्वाह नाटककार ने परम्परित कथा के आधार पर किया है।"[13]

निष्कर्षतः 'एक कंठ विषपायी' शिव, सती की प्रख्यात पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक युगबोध प्रस्तुत करता है। जिसमें पुरानी परंपराओं केखण्डन, युद्ध की विभीषिका

से पीड़ित मानवता और राज्यलिप्सा आदि आधुनिक समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है। इसके विपरीत आधुनिक कथ्य और समस्या को पुराने प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करने कीपद्धति को ही मूलतः गलत बताते हुए धनंजय का मत है कि"एक कंठ विषपायी' को पढ़ते हुए लगता है कि किसी रथ में कोई व्यक्ति कोट पतलून पहने बैठा है और उसके हाथ में तीर कमान है। फिर युद्ध की विभीषिका और समस्या आधुनिक भारतीय संदर्भो में कोई भोगा हुआ सत्य नहीं है। भारतीय जनता युद्ध–पीड़ित नहीं है। उसकी आशंका अवश्य इस बीच हमारे सामने आई थी, लेकिन इसका हल यदि कोई कवि महाभारत कालीन या पौराणिक प्रतीकों में ढूंढे तो वह कविएस्केप ही होगा।"[14] अगर सूक्ष्मता से देखा जाये तो भारतीय पौराणिक आख्यानों को नजर में रखकर मानवीय नाट्य की सृजना लेखक के द्वारा की गई है। "यह तर्क की युद्ध हमारा भोगा हुआसत्य नहीं आधारहीन और थोता है क्योंकि हमने युद्धजन्य संस्कृति को देखा परखा है। आज इन्सान चांद पर पहुंच चुका है। आज के विज्ञान की दुनिया में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चिंतन मनन करना आवश्यक हो जाता है और इन्हीं आधारों पर हम सोच–विचार कर जीवन जीते हैं। यदि यह सवाल हमें त्रस्त नहीं करता तो फिर दिन–प्रतिदिन शक्तिशाली देशों का भय क्यों हमें परेशान करता रहता है। पश्चिमी देशों ने जिस संकट को भोगा है,वह हमसे एकदम कटा हुआ अथवा टूटा हुआ नहीं हैं। नाटकार की पैनी दृष्टिअपनी देशीय सीमाओं की परिक्रमा ही नहीं करती बल्कि वह अपनी दृष्टि से उन सीमाओं को लाँघकर भी बहुत कुछ चिंतन–मनन करता है। मात्र अनुभूति ही ऐसा माध्यम है जो सदैव उसकी सहायिका बनी है। सर्वहत के माध्यम से इसी उद्देश्य की पूर्ति की गई है। आज हम जिस संकट बोध को भोग रहे हैं उससे नितांत नितान्त अविच्छिन्न और अधूरे रहना असंभव है।"[15] अतः युद्ध की समस्या भारतीय ही नहीं मानवीय है और नाटककार मानवीय संवेदना से युक्त होता है। फिर भी देशकालगत संकुचित दृष्टिकोण से सोचना एक नाटककार को चेतना को कुंठित और आशंकित भी कर सकता है। कुल मिलाकर आज माननीय परिदृश्य जिस भयावह दृष्टिकोण से गुजर रहा है, नाटककार ने उसी का जीवंतपरिदृश है हमारे सामने उपरिथत किया है। मानवता की रक्षा के लिए नाटककार का मानना है कि प्रत्येक मानव को प्रतिबद्ध होना आवश्यक है।

संदर्भः–

1. एक कंठ विषपायी – दुष्यन्त कुमार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986, पृ. आभार कथा
2. साहित्य और आधुनिक युगबोध – देवेंद्र इस्सर, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1991, पृ. 164
3. एक कंठ विषपायी – दुष्यन्त कुमार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986, पृ. 77
4. वही, पृ. 82
5. वही, पृ. 84
6. वही, पृ. 83
7. आस्वाद के धरातल–धनंजय वर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1995, पृ. 169–170
8. एक कंठ विषपायी– दुष्यन्त कुमार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986, पृ. आभार कथा
9. वही, पृ. 49
10. वही, पृ. 51
11. आस्वाद के धरातल–धनंजय वर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली. 1995, पृ. 164
12. आलोचना, अप्रैल–जून 1968, पृ. 92
13. विविध बोध नये हस्ताक्षर– डॉ. हुकुमचंद राजपाल, ग्रंथम रामबाग, कानपुर, पृ. 167
14. आस्वाद के धरातल–धनंजय वर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1995, पृ. 164–165
15. त्रिकोण में उभरती आधुनिक संवेदना– सुरेश गौतम, वीणा गौतम, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ. 206

गोवा विश्वविद्यालय

□□